वर्त्तमान शैक्षिक परिदृश्य में पंडित दीनदयाल उपाध्याय की प्रासंगिकता

रश्मि कुमारी
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
तिलकामांझी, भागलपुर, विश्वविद्यालय, भागलपुर
Email: krashmi784@gmail.com

सारांश

'शिक्षा तो संस्कार की भागीरथी है। साहित्य उस भागीरथी का वह दिव्य प्रवाह है जिसमें पड़ा हर कंकड़ शंकर बन जाता है।''

– पंडित दीनदयाल उपाध्याय

उपरोक्त कथनों से स्पष्ट होता है कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी शिक्षा को कितना महत्वपूर्ण मानते थे। बिना शिक्षा के कोई भी व्यक्ति समाज की सेवा नहीं कर सकता है। दीनदयालजी ने 1948 में अपने देश की सेवा हेतु राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ से जुड़े। उन्होंने हर प्रकार से देश की सेवा में अपना योगदान दिया। चाहे वह सामाजिक राजनीतिक या धार्मिक क्षेत्र ही क्यों न रहा हो उनका राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ से जुड़ने का मुख्य ध्येय ही राष्ट्र की सेवा करना था। उन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त बुराईयों से लड़ने के लिए शिक्षा को एक अस्त्र के रूप में इस्तेमाल करने का आहवान किया। शिक्षा का संबंध व्यक्ति और समाज से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। समाज के हित एवं विकास के लिए बच्चों की शिक्षा अत्यंत आवश्यक है। उपाध्याय जी भारतीय संस्कृति के अनुरूप शिक्षा कराने के पक्षधर थे। वह शिक्षण संस्थाएं विकसित करना चाहते थे, परंतु विकेंद्रित व्यवस्था के पक्षधर थे। उनके अनुसार, शिक्षा के माध्यम प्रमुख रूप से तीन हो सकते हैं– 'संस्कार, अध्यापन और स्वाध्याय। प्रस्तुत शोधपत्र में पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शैक्षिक चिंतन पर प्रकाश डाला गया है।

Reference to this paper should be made as follows:

Received: 05.09.2020
Approved: 30.09.2020
रश्मि कुमारी

वर्त्तमान शैक्षिक परिदृश्य में पंडित दीनदयाल उपाध्याय की प्रासंगिकता

RJPP 2020,
Vol. XVIII, No. II,
pp.235-242
Article No. 29

Online available at :
https://anubooks.com/?page_id=6391

वर्त्तमान शैक्षिक परिदृश्य में पंडित दीनदयाल उपाध्याय की प्रासंगिकता

रश्मि कुमारी

प्रस्तावना

एकात्म मानववाद के मंत्रदृष्टा पंडित दीनदयाल उपाध्याय राजनीति में भारतीय संस्कृति एवं परंपरा के प्रतिनिधि थे। उनका स्थान सनातन भारतीय प्रज्ञा प्रवाह को आगे बढ़ाने वाले प्रज्ञा–पुरूषों में अग्रगण्य है। दीनदयालजी ने अपना पूरा जीवन देश हित में समर्पित कर दिया और राष्ट्र चिंतन के द्वारा लोगों को और राजनीति को नया रास्ता दिखाया।

उनकी सामाजिक सक्रियता राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ के कार्यकत्ता के नाते ही रही है। लेकिन उनकी सक्रियता और संस्कारों को सम्मान देते हुए उन्हें राजनीतिक क्षेत्र का दायित्व मिला था। लेकिन उन्होंने कभी भी अपने आप पर राजनीति को हावी नहीं होने दिया। इसके अलावा वे लेखन के माध्यम से भी अपनी सक्रियता और सामाजिक भूमिका अदा करते थे। वे पत्रकार भी थे। वस्तुतः दीनदयाल उपाध्याय राजनीतिक क्षेत्र में सामाजिक व सांस्कृतिक दृष्टिपथ के प्रतिनिधि थे। वे राजनीति में संस्कृति के राजदूत थे।

राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ के एक प्रशिक्षण शिविर में भाषण करते हुए उन्होंने कहा, संघ के स्वंयसेवकों को राजनीति से दूर रहना चाहिए जैसे कि मैं हूँ। एक राजनीतिक दल के महामंत्री का यह कथन पहेली सरीखा था। अतः स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने कहा, "संघ का स्वंयसेवक समाज के हर क्षेत्र में सामाजिक सांस्कृतिक कार्यकर्त्ता के नाते ही जाना जाता है। विभिन्न राजनीतिक–आर्थिक संस्थाओं में सक्रिय काम करते हुए भी वह उन संस्थाओं व क्षेत्र की एकांगिता को अपने ऊपर हावी नहीं होने देता। राजनीति में जाते ही आज जो सत्तावाद एवं दलवाद व्यक्ति पर हावी होता है, इसको राजनीतिक क्षेत्र की मजबूरी माना जाता है, वे एक स्वंयसेवक के रूप में इन सब से दूर रहे।

राष्ट्रव्यापी आंदोलन के प्रणेता

दीनदयालजी ने राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ को सर्वव्यापी बनाने के लिए लोकसंचार, लोकचेतना एवं लोकसंग्रह का भी कार्य किया। राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ को एक राष्ट्रव्यापी आंदोलन बनाने में जिन कुछ लोगों का योगदान है, दीनदयाल उपाध्याय उनमें से एक थे। जिस सांस्कृतिक संगठन को गोलवलकर ने एक व्यापक आंदोलन बनाया, अनुशासित कार्यकत्ताओं की देश भर में एक उल्लेखनीय शक्ति उत्पन्न की। दीनदयाल जी ने उसे आगे बढ़ाया। वे इस कार्यकर्त्ता–निर्माण के कार्य में उतने ही महत्वपूर्ण थे जितने कि गोलवलकर, एकनाथ, रानाडे या बाबा साहब आपटे आदि। उन्होंने संगठन के मस्तिष्क का काम किया।

पुस्तकों द्वारा सामाजिक परिवर्त्तन

दीनदयालजी साहित्य के क्षेत्र में बहुत सक्रिय थे। उसी की बदौलत उन्हें एक बौद्यिक व्यक्ति के रूप में पहचान मिली राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ के प्रारंभिक काल एवं उसके संस्थापक के विषय में प्रथम शोधकार्य के नाते नारायणहरि पालकर ने डॉ0 हेडगवार का जीवनचरित लिखा। यह मूल रचना मराठी में थी। दीनदयाल जी ने ही उसको हिंदी पाठको को उपलब्ध करवाया। उन्होंने सहज ही पुस्तक का हिंदी अनुवाद कर दिया। राष्ट्रीय स्वंय संघ में जो साहित्य उपलब्ध है वह मुख्यतः गोलवलकर, उमाकांत केशव उपाध्याय, बाबा साहेब आपटे, एकनाथ

रानाडे, दीनदयाल उपाध्याय व दत्तोपंत ठेंगडी का ही है।

अखिल भारतीय दल के महामंत्री के रूप में सक्रिय होते हुए भी दीनदयालजी संघ कार्य के समक्ष राजनीति को गौण समझते थे। वे प्रतिवर्ष देश भर में लगभग तीस–चालीस दिन संघ–शिक्षा वर्ग के लिए प्रवास करते थे। संघ की प्रत्येक बैठक में अवश्य उपस्थित होते थे।

इस संदर्भ में यादवराव जोशी एक घटना को वर्णन करते हैं–

गत वर्ष (1967) विभिन्न राष्ट्रीय कार्य में भाग लेने वाले कुछ स्वंय सेवक नागपुर में एकत्र थे। ठीक उसी समय उत्तरप्रदेश में कांग्रेस मंत्रिमंडल का पतन हुआ था। साझा में मंत्रिमंडल गठित करने हेतु विपक्षी दलों की सरगर्मियाँ तेज हो गई थी। कुछ कार्यकर्त्ता जिन्हें नागपुर पहुँचना था इस भँवर में फस गए और नागपुर न पहुँच सके। इस बात का पता लगने पर दीनदयाल उपाध्याय उद्विग्न हो उठे। वे बोले, "हम पहले, स्वंयसेवक हैं और कुछ बाद में। जब भी संघ द्वारा कोई आह्वान दिया जाता है तो हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि अन्य सभी बातों को एक ओर फेंककर संघ की पुकार पर चलें।"

अर्थात् उपाध्याय जी संघ कार्य के समझ अन्य कार्य की प्राथमिकता नहीं मानते थे। राष्ट्रीय स्वंयसेवक संघ ने समाजजीवन में जो राष्ट्रहित, अनुशासन बद्धता तथा संगठन कौशल उत्पन्न करने का कार्य किया है, उनमें दीनदयाल उपाध्याय जी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

पंडित दीनदयाल जी के शिक्षा एवं शिक्षक संबंधी विचार –

पंडित दीनदयाल उपाध्याय भारतीय संस्कृति एवं स्वदेशी शिक्षा प्रणाली के पक्षधर थे। उन्होंने सदैव स्वदेशी शिक्षा प्रणाली को ही महत्व दिया एवं उत्थान का मार्ग माना। उनके विचार में हमारी सांस्कृतिक धरोहर ही हमें अपने गौरवमयी इतिहास से जोड़ने में समृद्ध है और हमारी संस्कृति स्वदेशी शिक्षा प्रणाली के द्वारा ही समाज में वांछनीय परिवर्त्तन लाया जा सकता है उनके विचार में हम स्वतंत्र होते हैं। पंडित दीनदयाल उपाध्यायजी के अनुसार किसी भी राष्ट्र की उन्नति उसकी संस्कृति एवं अखंण्डता पर निर्भर करती है एवं गुणवत्ता से ओत प्रोत नैतिक मूल्यों वाली विचारधाराएं आवश्यक है। गुणवत्ता एवं नैतिक मूल्यों वाली विचारधारायें हमारी स्वदेशी शिक्षा प्रणाली की विशेषता रही है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के अनुसार शिक्षा प्रक्रिया में छात्र प्रमुख स्थान रखता है। छात्र शिक्षा प्रक्रिया का वह महत्वपूर्ण अंग है जिसके बिना यह शिक्षा प्रक्रिया क्रियान्वित हो हीं नहीं सकती। उनके मतानुसार राष्ट्र की उन्नति उसकी संस्कृति एवं अखंडता उस राष्ट्र के छात्र पर निर्भर करती है। उन्होंने सदैव से ही राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता पर जोर दिया। अपनी विचारों को उन्होंने सदैव नवीन–प्राचीन, वैज्ञानिक–धार्मिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक एवं भौतिक सभी बिन्दुओं पर भली भाँति जाँच कर प्रस्तुत किया उन्होंने अपने अध्ययन में भारतीय संस्कृति का ज्ञान एवं अनुसरण को ही राष्ट्र एकता, अखंडता एवं उज्ज्वल उत्कृष्ट भविष्य हेतु अनिवार्य माना। उनके विचारों में नीवन अंग्रेजों द्वारा प्रदान की गई शिक्षा प्रणाली हमारे देश के लिए वैशाखी से ज्यादा कुछ नहीं थी। और वैशाखी कितनी भी अच्छी क्यों न हो हमेशा अधूरेपन का अहसास रहता है। किसी भी राष्ट्र की उन्नति उसके नौजवान युवा पीढ़ी पर आधारित होती है उनके विचारों

में हमारे युवा छात्रों को हमारी सांस्कृतिक धरोहर से अवगत कराया जिससे वे अपनी संस्कृति को समझें एवं उसी आधार पर देश की उन्नति एवं अखंडता हेतु प्रस्तुत हो।

दीनदयाल उपाध्याय जी अपने पूरे जीवन अपनी दूर दृष्टा शैक्षिक एवं दार्शनिक विचारधारा के माध्यम से प्रयोजनवादी विचारधारा को हरकर भारतीय संस्कृति को प्रतिष्ठित करने हेतु प्रयासरत रहे।

आजादी के बाद चाहे वह राजनीतिक क्षेत्र हो, आर्थिक क्षेत्र हो या सामाजिक क्षेत्र, पश्चिमी चिंतको को आदर्श और एक मात्र समाधान मानकर उसका अंधानुकरण हमने किया, शिक्षा भी इससे अछूती नहीं रही। हमारा जो भी परंपरागत है, वह हेय है, इस धारणा से संभवतः हमारे नीति–नियंता मुक्त नहीं हो पाए। किंतु इसका परिणम क्या हुआ? क्या हमारे विश्वविद्यालय अच्छे नागरिकों का निर्माण कर पाए ? क्या हमारी शिक्षा व्यवस्था मानवीय मूल्यों का विकास कर पाई ? क्या हम युवाओं को आत्मनिर्भर बना पाए? संभवतया नहीं, और इसी का परिणाम है कि आज के अपराधी, अनीति का आचरण करने वाले नौकरशाह, कर न देने वाले व्यापारी, उपाधियों के अर्धन के बाद भी रोजगार के नाम पर किसी भी जगह लग जाने की लालसा रखने वाले युवा, सब उसी व्यवस्था का परिणाम हैं जो विगत 250 वर्षों से यहां चली आ रही है। क्या ऐसे में हमें पुनरावलोकन नहीं करना चाहिए।

दीनदयाल जी ने जब कहा कि पश्चिमी राजनीतिक और आर्थिक चिंतनों को विकास की दिशा मानकर भारत के ऊपर उनका आरोपण करके, भारत को प्रतिबिंबित बनाने का प्रयास हुआ है, तो यह कथन जितना राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र पर लागु होता है, उतना ही शिक्षा पर भी। जिस लंदन विश्वविद्यालय को आदर्श मानकर 21वीं सदी में भारतीय विश्वविद्यालयों का रूप गढ़ा गया, वह तो स्वंय कुछ समय के बाद बदलाव की बयार के साथ आगे बढ़ गया पर हम उसी लकीर को पीटते रह गए।

यहां भारतीय व्यवस्था से आशय न तो पुरानी गुरूकुल व्यवस्था को पुनः लागु करने से है, न ही वर्त्तमान संस्थाओं को पूर्णतया समाप्त करने से। क्योंकि दीनदयाल जी ने स्वयं कहा था– पुनः लौटकर चलना वांछनीय हो या न हो, असंभव अवश्य है, समय की गति को पीछे नहीं लौटाया जा सकता' परंतु वे यह भी चेताते हैं कि विदेशी विचार सार्वलौकिक नहीं, परिस्थितिजन्य हैं, वे परिस्थिति विशेष और प्रकृति विशेष की उपज हैं। अतः दोनों दिशाओं में अतिरेक की आवश्यकता नहीं है। इस विचार से हमें यह ग्रहण करने की आवश्यकता है कि किस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था हमारी परिस्थिति और प्रकृति के अनुरूप है? हमें उसके लिए स्वंय को तैयार करना होगा।

अब हम जब शिक्षा के भारतीय परिप्रेक्ष्य का चिंतन कर रहे हैं, तब हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वह हमारी आवश्यकताओं, मूल्यों और संस्कृति के अनुरूप हो। दीनदयाल जी के शब्दों में – 'प्रत्येक देश की अपनी विशिष्ट ऐतिहासिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति होती है। अतः हमें अपनी संस्कृति का विचार करना होगा, अपनी संस्कृति के तत्वों की पहचान करनी होगी और उनका पोषण व संवर्धन करना होगा। यह महती कार्य भारत के विश्वविद्यालयों को करना होगा।

शिक्षा एक सामाजिक उत्तरदायित्व

समाज के हित एवं विकास के लिए बच्चों की शिक्षा अत्यंत आवश्यक है। जन्म के समय बच्चा जानवर सदृश्य हैं। वह समाज का जिम्मेदार सदस्य केवल शिक्षा और संस्कृति के कारण ही बन पाता है। समाज के हित के लिए शुल्क लेने का प्रचलन हुआ। यदि शुल्क न दे पाने कारण कोई अशिक्षित रह जाता है तो समाज इस स्थिति को सहन नहीं कर सकता।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के अनुसार उच्चतर शिक्षा गुरूकुलों में निःशुल्क थी और यहां तक कि खाने और रहने की व्यवस्था भी वहां निःशुल्क होती थी। कोई भी घर विद्यार्थियों को शिक्षा देने के लिए इन्कार नहीं करता था। समाज ही शिक्षा के बोझ को वहन करता था।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के अनुसार पेड़ लगाने और सींचने के लिए हम पेड़ से पैसा नहीं लेते। हम तो अपनी ओर से पूँजी लगाते हैं और जानते हैं कि पेड़ पर हमें फल मिलेंगे ही। शिक्षा भी इसी प्रकार का विनियोजन हैं। व्यक्ति शिक्षित होने पर समाज के लिए काम करेगा ही, किंतु जो व्यवस्था बचपन से हमें व्यक्तिवादी बनाती हो, उससे समाज की अवहेलना करने वाले निकलें तो इतना आश्चर्य क्यों?

पंडित दीनदायल उपाध्याय के अनुसार अनुभव का एक से दूसरे समूह में स्थानांतरण की इस प्रक्रिया को ही शिक्षा कहते हैं। यदि शिक्षा न हो तो समाज का जन्म नहीं हो सकता है। शास्त्रों के अनुसार समाज से शिक्षा प्राप्त करना एक प्रकार का ऋण है, जिसे चुकाना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है।

जब हम भावी पीढ़ी की शिक्षा की व्यवस्था करते हैं, वास्तव में हमारे द्वारा उन पर उपकार नहीं किया जाता है बल्कि हम पूर्वजों द्वारा अर्जित अनुभव को भावी पीढ़ी को सौंपकर उनके ऋण से मुक्त हो सकते हैं।

जॉन बुकन के अनुसार–

''हम भूत के ऋण से मुक्त हो सकते हैं, यदि हम भविष्य को अपना ऋणी बनाँए।''

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के शैक्षिक दर्शन से विदित होता है कि शिक्षा के माध्यम प्रमुख रूप से तीन हो सकते हैं– संस्कार, अध्यापन और स्वाध्याय।

संस्कार

व्यक्ति अपने आस–पास चारों ओर के समाज से निरंतर कुछ न कुछ सीखता है, जिस संस्कार की संज्ञा दी गई है। इस समाज का प्रत्येक व्यक्ति शिक्षक का कार्य करता है। स्वभावतः पिछली पीढ़ी के आचार–विचार का संस्कार भावी पीढी पर पड़ जाता है। अर्थात् माता–पिता, परिजन, गुरूजन, सहपाठी, समाज के नेता आदि सभी का प्रभाव भावी पीढ़ी पर पड़ता है।

अध्यापन

अध्यापन के अंर्तगत निश्चित पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षण के द्वारा ज्ञान प्रदान करना होता है, जबकि मानव के अर्जित ज्ञान को भाषा के द्वारा बहुत ही कम मात्रा में व्यक्त किया जा सकता है तथा इसमें से कुछ ही लिपिबद्ध है। गुरूकुल पद्यति में पाठ्यक्रम के अंतर्गत वेदों,

उपनिशदों के ज्ञान के साथ ही कषशि, युद्ध, कौशल, अर्थशास्त्र, राजनीति, चित्रकारी, संगीत, भिक्षाटन का भी स्थान प्रमुखता से होता था। प्रत्येक शिष्य अपनी क्षमता एवं रूचि के अनुसार कौशल को गुरू से प्रत्यक्ष रूप से अर्जित करता था।

उनके अनुसार, अध्यापन के अंतर्गत वे सब क्रियाएँ आती है, जिनके द्वारा कोई व्यक्ति या व्यक्ति समूह अपने पास के ज्ञान को दूसरे को देने का प्रयास करता है। यह प्रयास विद्यालयों में हीं नहीं अपितु घर–घर में खेत–खलिहान, कारखानों, बाजार, कला–भवनों खेत के मैदानों में भी चलता रहता था।

स्वाध्याय

तीसरा माध्यम स्वाध्याय द्वारा मनुष्य स्वंय ज्ञान अर्जित करता है जिसके लिए लिपि ज्ञान का होना आवश्यक है। स्वाध्याय मनुष्य का स्वंय अध्यापन है। पठन, मनन और चिंतन के सहारे मनुष्य ज्ञान को आत्मगम्य करता है। बिना स्वाध्याय के न तो प्राप्त ज्ञान टिकता है और न बढ़ता है। स्वाध्याय के बिना ज्ञान को जीवन का अंग बनाकर तेजस्वी बनाने का तो प्रश्न हीं नहीं। पठन, मनन और चिंतन के द्वारा अर्जित ज्ञान मनुश्य के व्यक्तित्व को प्रभावषाली बनाता है।

एकात्म मानववाद और शिक्षा विशयक पं0 दीनदयाल उपाध्याय के उद्धत विचारों के आधार पर निम्नलिखित बातें स्पष्ट हो जाती है–

1. भारतीय संस्कृति सम्पूर्ण जीवन का विविधताओं के बावजूद एकात्म अर्थात् एकत्व के रूप में देखती है।
2. भेद दृष्टि भारतीय संस्कृति में निंदित है जैसा कि भगवान गीता में कहते हैं कि अस्थिर विचारवाले विवेकहीन सकामी मनुष्यों की बुद्धि भेदोंवाली और अनंत होती है।
3. जीवन अथवा समाज में दृष्टिगोचर विविधता वस्तुतः आंतरिक एकता को दर्शाती है।
4. शिक्षा समाज का उत्तरदायित्व है।
5. शुल्क देकर शिक्षा प्राप्ति का प्रचलन अभारतीय है।
6. शुल्काभाव के कारण अशिक्षित रहना समाज के लिए असहत्य है।
7. शिक्षा और संस्कृति ही मनुष्य को जिम्मेदार बनाती है।
8. पूर्वकाल में ब्रह्मचारियों द्वारा भिक्षाटन और एतदथ पूर्ण सामाजिक सहयोग साबित करता है कि शिक्षा समाज का उत्तरदायित्व रहा है।

उपाध्याय के संपूर्ण वैचारिक प्रतिपादन में शिक्षा व संस्कार व्यवस्था का सर्वाधिक महत्व है। वे समाज के चतुर्विध पुरूषार्थों की मूलभूत आधारशिला शिक्षा को ही मानते हैं। शिक्षा से प्राप्ति सामर्थ्य समाज को सदैव सही रास्ता खोजने के लिए सिद्ध करता है। अतः राजनीतिक व आर्थिक कारणो से योजनाकार जब शिक्षा की अवहेलना करते हैं तब उपाध्याय उसे अनुचित बताते हैं।

अतः उपाध्याय जी शिक्षा के दोहरे ढाँचे, जिसमें पब्लिक स्कूल व सरकारी अथवा निजी स्कूल की व्यवस्था होती है के खिलाफ हैं। वे पब्लिक स्कूलों को राष्ट्रीयता नाशक प्रभाव जोड़ने वाले स्कूलों के नाते वर्णित करते हैं। शिक्षा समाज में भेद निर्माण करने वाली न होकर एकात्म

भाव निर्माण करने वाली हो। भारत के पब्लिक स्कूल इस उद्येश्य के प्रतिकूल हैं। आवश्यकता है कि सभी शिक्षण संस्थान का स्तर ऊँचा उठाया जाय।

शिक्षा के माध्यम के संबंध में दीनदयाल उपाध्याय का बहुत जोर है। वे भाषा को केवल अभिव्यक्ति का माध्यम हीं नहीं वह स्वंय भी एक अभिव्यक्ति है। भाषा के एक–एक शब्द वाक्य रचना, मुहावरें आदि के पीछे समाज जीवन की अनुभूतियाँ राष्ट्र की घटनाओं का इतिहास छिपा हुआ है। फिर स्वभाशा को अलग–अलग प्रकोष्ठों में नहीं बाँटती।

शिक्षा का प्रबंध रूचि के अनुसार

दीनदयाल जी ने लिखा है कि प्रथमतः शिक्षा की प्रारंभिक एवं माध्यमिक अवस्थाओं में हमें विद्यार्थी को उसके घरेलु धंधे के वातावरण से अलग करने की जरूरत नहीं। बल्कि हम ऐसा प्रबंध करें कि वह उस वातावरण में अधिक रह सके तथा अज्ञात रूप वह धंधा सीख सके।

धीरे–धीरे हमें यह भी प्रयत्न करना होगा कि वह अपने अभिभावकों का सहयोगी बन सके। माध्यमिक शिक्षा समाप्त करने तक नवयुवक को अपना धंधा भी आना चाहिए। हो सकता है कि उन धंधों की योग्यता के प्रमाण पत्र की हमें कुछ व्यवस्था करनी पड़े। माध्यमिक शिक्षा तक कुशाग्र बुद्धि सिद्ध होने वाले नवयुवकों की आगे शिक्षा का प्रबंध उनकी रूचि के अनुसार किया जाय।

औद्योगिक शिक्षा अनिवार्य

दीनदयालजी ने लिखा है कि बेकारी के इन कारणों को दूर करके समस्या को मौलिक रूप से हल करने के साथ ही आज जो बेकार हो गए हैं अथवा हो रहे हैं उनको फिर से काम देने की तथा जब तक काम नहीं मिलता तब तक उनकी व्यवस्था करने की जिम्मेदारी भी सरकार की है। आज के बेकारों में बहुत बड़ी संख्या पढ़े–लिखे लोगों की है। उनको खपाने के लिए स्कूल खोलने की नीति सरकार ने अपनाई है। इस नीति को और भी व्यापक करना होगा।

स्कूल और कॉलेजों में तुरंत ही औद्योगिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का प्रबंध कर देना चाहिए। जो अंतिम परीक्षा पास करके निकलने वाले हैं उनके लिए एक वर्ष की औद्योगिक शिक्षा अनिवार्य कर दी जाए। इससे पढ़े–लिखे बेकारों की समस्या के हल की दौड़ में एक वर्श तुरंत आगे बढ़ जाएँगे तथा संभव है कि एक वर्ष की औद्योगिक शिक्षा प्राप्त नवयुवकों में से बहुत से लोग बाबूगिरि की और न दौड़कर हाथ से रोजी कमाना शुरू कर दें।

रचनात्मक कार्य

पढ़े–लिखे लोगों की शिक्षा के औद्योगिक शिक्षा केंद्र खाले जाएँ वे शिक्षा के साथ–साथ काम भी कर सकें। ये केंद्र सरकार के द्वारा बड़े पैमाने पर खोले जाने चाहिए।

अपने क्षेत्र के छोटे–छोटे उद्योगो की तालिका बनाकर उनमें शिक्षार्थी के रूप में एक–एक दो व्यक्तियों को रखा जा सकता है। आज बहुत से कारोबार ऐसे हैं जिनमें रोजी कमाई जा सकती है। हाँ सीखे हुए लोगों की कमी है। छोटे–छोटे उद्योग केंद्र भी सहकारी आधार पर चलाए जा सकते हैं। स्वदेशी की भावना एवं पारस्परिक संबंध के सहारे उनके लिए बाजार भी मिल सकता है। इनके अतिरिक्त और भी रचनात्मक कार्य हाथ में लिये जा सकते हैं।

यहाँ दीनदयालजी को एक और चेतावनी पर ध्यान देने की आवश्यकता है, उनका कहना है, "उत्साह में संकीर्ण राष्ट्रवाद के विचार को राष्ट्र की प्रगति में बाधक नहीं बनने देना चाहिए।"

निष्कर्ष

इस प्रकार एकात्म मानव दर्शन का शिक्षा एवं शिक्षक दोनों ही के ऊपर प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों रूपों में प्रभाव है। दीनदयाल जी एक शिक्षाविद् नहीं थे लेकिन भारतीयता और राष्ट्रीय चेतना को समझने वाले एक ऋषि थे। उन्होंने जीवन में जो कुछ अनुभव किया उसे ही एकात्म मानव दर्शन के रूप में हमारे सामने रखा। उनके विचारों से शिक्षा जगत एक ऐसी दिशा ले सकता है जो वर्त्तमान समय में आ रही बहुत सी शैक्षिक समस्याओं का समाधान हो सकता है। एकात्म मानव दर्शन द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में नयी क्रांति का उद्येश्य संभव है एवं इन विचारों द्वारा नागरिक अपने परिवार, समाज एवं राष्ट्रहित के उत्थान के लिए योगदान कर देष का चहुँमुखी विकास करने में अपनी सक्रिय भूमिका निभा सकता है। आवश्यकता है एक प्रारंभ की, जो किसी को तो करना होगा।

संदर्भ ग्रंथ

1. पंडित दीनदयाल उपाध्याय, *एकात्म मानवदर्शन – विविध आयाम :* (सं0) : मनोज कुमार सक्सेना, संस्करण–प्रथम, 2018, प्रकाशक – अनामिका पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, पृ0 **107**
2. *प्रखुर राष्ट्रभक्त : पं0 दीनदयाल उपाध्याय ;* डॉ0 रमेश पोखरियाल 'निशंक', प्रकाशक : डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा0) लि0, संस्करण 2019, पृ0 **61**
3. *प्रखुर राष्ट्रभक्त : पं0 दीनदयाल उपाध्याय* ; डॉ0 रमेश पोखरियाल 'निशंक', प्रकाशक : डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा0) लि., संस्करण – 2019, पृ0 **63**
4. *दीनदयाल उपाध्याय : कर्तत्व एवं विचार* : डॉ0 महेशचन्द्र शर्मा, प्रभात प्रकाशन, पृ0 **283**
5. *दीनदयाल उपाध्याय : एकात्म मानव दर्शन* : सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली–55, संस्करण–2015, पृ0 **17–18**
6. *प्रखुर राष्ट्रभक्त, पं0 दीनदयाल उपाध्याय* : डॉ0 रमेश पोखरियाल 'निशंक' प्रकाशक : डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा0) लि. , संस्करण –2019, पृ0 **197–198**
7. *पं0 दीनदयालजी प्रेरक विचार,* सं0 डॉ0 रवींद्र अग्रवाल, प्रकाशक विद्या विहार, नई दिल्ली, संस्करण : प्रथम, 2018, पृ0 **139**
8. *एकात्म मानववाद के प्रणेता : दीनदयाल उपाध्याय* अमरजीत सिंह ; प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 **247**
9. *पं0 दीनदयाल कर्तत्व एवं विचार* ; डॉ0 महेशचन्द्र शर्मा, प्रभात प्रकाशन, पृ0 **279**
10. *पं. दीनदयाल उपाध्याय एकात्म मानव दर्शन–विविध आयाम :* (सं0) : मनोज कुमार सक्सेना, प्रकाशक : अनामिका पब्लिशर्स संस्करण : 2018, पृ0 **98**